



International Journal of Humanities and Arts

ISSN Print: 2664-7699
ISSN Online: 2664-7702
Impact Factor: RJIF 8.00
IJHA 2023; 5(1): 01-03
www.humanitiesjournals.net
Received: 01-02-2023
Accepted: 05-03-2023

Dr. Deepak Kumar Gupta
Assistant Professor,
Department of Philosophy,
Lakshmbai College,
University of Delhi, New
Delhi, India

भर्तृहरि के दर्शन में शब्दद्वैत तथा शब्दानुविद्धता का विश्लेषण

Dr. Deepak Kumar Gupta

DOI: <https://doi.org/10.33545/26647699.2023.v5.i1a.34>

सारांश

इस लेख में मुख्य रूप से शब्दद्वैत क्या है? तथा इसकी व्याख्या के सन्दर्भ में भर्तृहरि सहित अन्य दार्शनिकों के मत का उल्लेख करते हुए यह देखने का प्रयास किया जायेगा कि ज्ञान प्राप्ति में की क्या भूमिका है।

कूटशब्द : शब्दद्वैत, शब्दानुविद्धता, शब्दतत्त्व, वाक्यपदीय, भर्तृहरि

प्रस्तावना

भर्तृहरि ने वाक्यपदीय की प्रथम कारिका में अपने शब्दाद्वैत दर्शन का प्रतिपादन किया है। उन्होंने कहा कि परमार्थ सत्य एक अर्थात् अद्वैत है और वह तत्त्वतः शब्द रूप है।¹ सर्वशक्तियुक्त उसी शब्दतत्त्व से समग्र विश्व प्रपञ्च का उदय होता है। सम्पूर्ण वाक्यपदीय भर्तृहरि के इस शब्दाद्वैतवाद की प्रतिस्थापना के विवेचन, सिद्धि व्याख्या आदि के रूप में देखा जा सकता है।

भर्तृहरि ने शब्दाद्वैत की स्थापना के लिए वाक्यपदीय में युक्तियाँ भी दिया है। इनमें सर्वप्रथम युक्ति कारण-कार्यलक तर्क है। इस तर्क में यह दिखाया गया है कि कारण और कार्य में धर्म की एकरूपा होनी चाहिए।

समानधर्मी कारण से ही समानधर्मी कार्य की उत्पत्ति होती है। भर्तृहरि के अनुसार कार्यकारणभाव के विषय में सभी दार्शनिक सम्प्रदाय कार्यो में कारण धर्मों के समन्वय को मानते हैं और कार्यो में इसी समन्वित धर्म के आधार पर मूल कारण का स्वरूप निश्चित करते हैं। उदाहरण के लिए सुवर्ण निर्मित कटक, कुण्डल, रुचक आदि विविध नामरूपात्मक पदार्थ नाम-रूप की दृष्टि से एक दूसरे से भिन्न है किन्तु उनमें एक सुवर्ण धर्म समान रूप से पाया जाता है।²

इस प्रकार इस व्याख्या से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि विभिन्न नाम-रूप वाले पदार्थों में यदि कोई एक सामान्य धर्म पाया जाता है तो वह उसके मूल कारण का सूचक होता है। कार्यकारणभाव के इसी सिद्धान्त के आधार पर विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदायों ने जगत् के कारण पर विचार किया है। नैयायिक सम्प्रदाय ने परमाणुरूप पृथिवी आदि को कारण कहा है क्योंकि पृथिवी रूप कार्य का कारण भी पृथिव्यात्मक ही होना उचित है। सांख्य सम्प्रदाय ने सभी व्यक्त पदार्थों को सुख, दुख और मोह से समन्वित पाकर उनके मूल कारण के रूप में त्रिगुणात्मक प्रधान को जगत् का कारण माना है। इसी प्रकार कुछ सम्प्रदाय ने पदार्थों को संसृष्ट रूप देखकर व्यक्तिमूह को इनका कारण होना माना है तो किसी सम्प्रदाय ने अविद्या को जगत् का कारण स्वीकार किया है। भर्तृहरि कहते हैं कि कार्यकारणभाव विषयक इसी सिद्धान्त के आधार पर आगम में विश्व प्रपञ्च का कारण शब्दतत्त्व स्वीकार किया गया है।³

वैयाकरण कहते हैं कि समस्त व्यावहारिक सत्ता शब्द, अर्थ और ज्ञान इन तीन रूपों में पायी जाती है।⁴ इन तीनों में ही शब्द के अनुगत होने से इनमें तात्त्विक सत्ता शब्द की ही है क्योंकि अर्थ और ज्ञानव्यवहार सदा ही शब्द में ही अथवा शब्द से अनुगत रूप में ही पाया जाता है। पतंजलि ने इसे इन तीनों का 'इतरेताध्यास'⁵ कहा है तथा हेलाराज ने इसे तीनों का 'लोलीभाव'⁶ कहा है। वैयाकरण इसी भाव के आधार पर अपने शब्दाद्वैत की प्रतिस्थापना एवं व्याख्या करते हैं।

शब्दाद्वैत के आधारभूत प्रमाण के रूप में ज्ञानमात्रा की शब्दानुविद्धता को स्वीकार किया जाता है। व्यवहार में जब भी कोई अर्थ ज्ञान का विषय बनता है चाहे वह ज्ञान शाब्दबोध रूप हो, अनुमान हो अथवा प्रत्यक्ष ज्ञान हो, वह सदा शब्द से उपगृहीत होता है। शाब्दबोध की शब्दानुविद्धता को स्पष्ट करते हुए नागेश कहते हैं कि किसी से यदि पदार्थ का स्वरूप पूछा जाये तो उससे उत्तर मिलता है— घट आदि। उसी से जब पदार्थ के वाचकशब्द को पूछा जाए तब भी उत्तर मिलता है—घट। यहाँ शब्द, अर्थ और ज्ञान के स्वरूप के विषय में किए गए प्रश्न का एक ही शब्द घट से उत्तर दिया जाता है। यह तथ्य अर्थ और उसको विषय करने वाले ज्ञान की शब्दानुविद्धता तथा शब्द के साथ उसके तादात्म्य को सिद्ध करता है।⁷

Corresponding Author:
Dr. Deepak Kumar Gupta
Assistant Professor,
Department of Philosophy,
Lakshmbai College,
University of Delhi, New
Delhi, India

इसी प्रकार अनुमानजन्य की भी शब्दानुविद्धता वैयाकरण सिद्ध करते हैं। उनके अनुसार अनुमान में अनुमित अर्थ शब्दानुविद्ध होता है। जब तक अधिकार शब्द से अनुगत न हो तब तक वह प्रतीति में स्वरूपतः आ ही नहीं सकता। इस प्रकार प्रतीति के आधार पर अनुमानजन्य ज्ञान की शब्दानुविद्धता सिद्ध होती है।⁹

यहाँ पर प्रत्यक्ष ज्ञान की शब्दानुविद्धता के विषय में प्रश्न उठाया जा सकता है कि क्या वैयाकरण प्रत्यक्ष के दो भेद— निर्विकल्पक और सविकल्पक मानते हैं। एक अन्य प्रश्न उठाया जा सकता है कि क्या निर्विकल्पक प्रत्यक्ष वैयाकरण अभिमत ज्ञान की शब्दानुविद्धता के परिप्रेक्ष्य में संभव हो सकता है? यदि निर्विकल्पक प्रत्यक्ष हो सकता है तो उसकी शब्दानुविद्धता कैसे प्रतिपादित की जा सकती है?

भर्तृहरि निर्विकल्पक प्रत्यक्ष की अवस्था मानते थे यह बात स्वोपज्ञवृत्ति में इसके उल्लेख से स्पष्ट होती है। वहाँ अविकल्पक प्रत्यक्ष को बाह्य विषयों के बारे में सर्वप्रथम होने वाला प्रत्यक्ष कहा गया है। इसके अनुसार प्रत्यक्ष में वस्तु के गोत्व आदि विशेष धर्मों का परिच्छेद न होने से उस वस्तु के स्वरूप मात्रा का प्रत्यक्ष होना कहा गया है।⁹

इस उल्लेख से स्पष्ट है कि वैयाकरणदर्शन में निर्विकल्पक प्रत्यक्ष को मान्यता दी गई है। यह प्रश्न महत्वपूर्ण है क्योंकि न्याय तथा मीमांसा दर्शन में प्रत्यक्ष ज्ञान की शब्दानुविद्धता नहीं मानी गयी है तथा वैयाकरण दर्शन में भी निर्विकल्पक प्रत्यक्ष की शब्दानुविद्धता पर प्रश्न उठाया जाता है। न्यायदर्शन के अनुसार निर्विकल्पक प्रत्यक्ष तो सर्वथा शब्द-संसर्ग शून्य होता ही है, सविकल्पक प्रत्यक्ष भी शब्द-संसर्ग युक्त होते हुए भी शब्दानुविद्ध नहीं होता। उनके अनुसार शब्दार्थ सम्बन्ध में अव्युत्पन्न लोगों को, यथा संकेतज्ञान रहित बालकों तथा मूक लोगों को जो ज्ञान उत्पन्न होता है, वह शब्द-संभेद से शून्य वस्तुविषयक ही होता है। नैयायिकों के अनुसार सविकल्पक ज्ञान में भी शब्द अर्थ का उस प्रकार विशेषण नहीं बनता जैसे रूप रूपवान् द्रव्य का बनता है। सविकल्पक अवस्था में भी शब्द और अर्थ का तादात्म्य नहीं होता। नैयायिक कहते हैं कि शब्द, अर्थ और ज्ञान इन तीनों के लिए समानाकार शब्द के प्रयोग के कारण वैयाकरणों को यह भ्रान्ति हुई है कि ज्ञानमात्रा शब्दानुविद्ध है।¹⁰ कुमारिल ने भी शब्दार्थ सम्बन्ध में अव्युत्पन्न शिशुओं और बधिर-मूकों के ज्ञान को शब्दोपराग से रहित, विशुद्ध वस्तु को विषय करने वाला ज्ञान माना है।¹¹

इनसे भिन्न वैयाकरण न केवल सविकल्पक प्रत्यक्ष को शब्दानुविद्ध मानते हैं अपितु निर्विकल्पक प्रत्यक्ष ज्ञान को भी सदा शब्द से युक्त होना मानते हैं। भर्तृहरि ने शब्दार्थ सम्बन्ध में अव्युत्पन्न शिशु के ज्ञान को भी शब्द से अनुगत होना कहा है।¹² भर्तृहरि के अनुसार जन्मजात शिशु भी हाथ, पैर आदि का संचालन करता है। रोने आदि के समय शब्द उत्पन्न करता है जो कि वाग्यन्त्रा द्वारा ही उत्पन्न किया जा सकता है। बालक की ये सारी क्रियाएँ उसके ज्ञान द्वारा ही संपादित होती हैं। बालक भाषा का ज्ञान सीखने से पूर्व ही विविध कार्य संपादित करता है जो बिना ज्ञान के संपादित नहीं हो सकता। इससे यह बात प्रमाणित होती है कि किसी भाषाविशेष के ज्ञान के अभाव में भी ज्ञान की सत्ता अवश्य होती है। अतः जब बालक किसी कार्य का सम्पादन करता है तो उसकी भी कर्तव्यविषयक प्रतिपत्ति शब्दपूर्वक होनी ही मानी जायेगी।¹³ यह बात अलग है कि वह शब्द अस्पष्ट रूप वाला है। यह भी माना जा सकता है कि पूर्वजन्म में अभ्यस्त शाब्दव्यवहार से आहित शब्द-संस्कार ही उसकी कर्तव्य-प्रतिपत्ति का प्रकाशक हो।

भर्तृहरि कहते हैं कि बच्चे का शब्द सूक्ष्म और अनाख्येय होता है जिससे उसके स्वरूप का निर्वचन नहीं किया जा सकता।¹⁴ यदि बच्चे का ज्ञान इस सूक्ष्म शब्द से रहित होता तो वह भाषा ही सीख नहीं पाता क्योंकि भाषा सीखने के लिए शब्द, अर्थ और इसके सम्बन्ध को ग्रहण करना तथा तदनुसार प्रयोग करना

आवश्यक होता है। बालक वृद्धजनों का शब्दव्यवहार देखकर उनका अनुकरण करता है, उसी तरह बोलने का प्रयत्न करता है। यह सब वह नहीं कर सकता यदि उसका ज्ञान शब्द भावना से भाषित न हो।¹⁵

इसी प्रकार स्वप्नगत ज्ञान को भी वैयाकरण शब्दानुविद्ध मानते हैं। उनके अनुसार स्वप्न दशा में भी पदार्थों का भान होता ही है। जाग्रत चेतना का सर्वथा अभाव कभी नहीं होता है। भट्टद्वैत दार्शनिक ज्ञान को आत्मा का गुण न मानकर क्रिया मानते हैं। उनके अनुसार ज्ञान आत्मा की क्रिया है जो ज्ञान के विषय में ज्ञातता का पफल वैसे ही उत्पन्न कर देती है जैसे पकाने की क्रिया चावल में पकता का पफल उत्पन्न कर देती है। जिस प्रकार पकाने की क्रिया के कारण पके हुए चावल बिना पके चावल से अलग हो जाते हैं वैसे ही ज्ञान की क्रिया के पफलस्वरूप ज्ञात विषय अज्ञात विषय से अलग होते हैं।

ज्ञान को चेतना का स्वरूप मानने वाले दर्शनों में सांख्य योग, अद्वैत-वेदान्त, भर्तृहरि, शैव सिद्धान्त तथा काश्मीर शैवदर्शन प्रमुख हैं। इन दर्शनों के अनुसार चैतन्य स्वयं में तत्त्व है, किसी का गुण अथवा कर्म नहीं तथा वह ज्ञानस्वरूप है। सांख्यदर्शन व्यावहारिक ज्ञान में पुरुष का सक्रिय योगदान स्वीकार नहीं करता है। इसके अनुसार पहले विषय इन्द्रिय के माध्यम से मन के साथ संयोग करता है, तत्पश्चात् मन उस विषय को बुद्धि तक पहुँचाता है। बुद्धि उस विषय के आकार को ग्रहण कर लेती है। बुद्धि में सत्त्व गुण की प्रधानता होती है जो कि प्रकाशक होता है। बुद्धि एक ओर तो विषय के आकार को ग्रहण करती है तथा दूसरी ओर पुरुष द्वारा प्रकाशित होती है। सांख्यदर्शन वस्तुवादी दर्शन होने के कारण ज्ञानमीमांसीय द्वैतवाद को स्वीकार करता है। इसके अनुसार विषय की ज्ञान से बाह्य तथा स्वतन्त्रा सत्ता है तथा वही ज्ञान में प्रकाशित होती है। ज्ञान विषय को प्रकाशित मात्रा करता है, उसकी रचना नहीं करता।

अद्वैत-वेदान्त के अनुसार चैतन्य तत्त्व, ब्रह्म, सत्, ज्ञान रूप, चित्त तथा शुद्ध आनन्द रूप है। अद्वैत-वेदान्त को चैतन्य के अतिरिक्त किसी भी अन्य तत्त्व की सत्ता स्वीकार्य नहीं है। इस दर्शन में व्यावहारिक ज्ञान को पारमार्थिक दृष्टि से सत् नहीं माना गया है, यह प्रतीति मात्रा है। अद्वैत-वेदान्त की ज्ञानमीमांसा वस्तुवादी है। इसके अनुसार वास्तव में चैतन्य के होने पर भी उपाधि से यह त्रिविध हो जाता है— प्रमातृ चैतन्य, प्रमाण चैतन्य तथा विषय चैतन्य। एक ही चैतन्य तत्त्व उपाधियुक्त होकर ज्ञाता, ज्ञान तथा ज्ञेय त्रिपुटीयुक्त प्रतीत होता है। विषय उपाधि से युक्त चैतन्य विषय चैतन्य, अन्तःकरण की उपाधि से युक्त चैतन्य प्रमातृ चैतन्य या ज्ञाता तथा अन्तःकरण की वृत्ति की उपाधि से युक्त चैतन्य प्रमाण चैतन्य या ज्ञान चैतन्य कहलाता है।

उपर्युक्त समस्त व्याख्या के पश्चात् निष्कर्षतः हम देखते हैं कि यहाँ भाषा की प्रक्रिया के माध्यम के रूप में शब्द ही कार्य करता है। शब्द के सन्दर्भ में जो समस्या हमारे समझ प्रस्तुत हुयी वह यह थी कि शब्द को द्वैत माना जाए या अद्वैत। भर्तृहरि ने शब्द को अद्वैत सिद्ध किया और कहा कि कारण और कार्य में धर्म की एकरूपता होनी चाहिए। समानधर्मी कारण से ही समानधर्मी कार्य की उत्पत्ति होती है। उनका मानना है कि परमार्थ सत् से ही समस्त जगत् का उद्भव हुआ है। यह परमार्थ सत् तत्त्वतः शब्द रूप है जो एक अर्थात् अद्वैत है। इस शब्द से सब की उत्पत्ति, इस आधार पर सिद्ध की जाती है कि हमारा समस्त व्यवहारिक सत्ता, अर्थ और ज्ञान के रूप में पाया जाता है तथा इन तीनों रूपों में शब्द ही अनुगत है। साथ ही प्रत्यक्ष तथा अनुमानजन्य ज्ञान आदि की भी शब्दानुविद्धता स्वीकार की जाती है। यहाँ एक समस्या प्रत्यक्ष के संदर्भ में आती है क्या वैयाकरण के संदर्भ में निर्विकल्पक प्रत्यक्ष की शब्दानुविद्धता संभव हो सकती है। भर्तृहरि ने स्वोपज्ञवृत्ति में इसको मान्यता दी है। जबकि न्याय तथा मीमांसक प्रत्यक्ष ज्ञान की शब्दानुविद्धता को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं। उनका मानना है कि शब्द, अर्थ और ज्ञान

इन तीनों के समानाकार शब्द के प्रयोग के कारण ही वैयाकरणिक ज्ञानमात्रा को शब्दानुविद्ध मानते हैं। नैयायिकों का कहना है कि निर्विकल्पक प्रत्यक्ष तो शब्द-संसर्ग शून्य होता ही है, सविकल्पक प्रत्यक्ष शब्द-संसर्ग मुक्त होते हुए भी शब्दानुविद्ध नहीं होता। क्योंकि सविकल्पक ज्ञान में भी शब्द अर्थ का उस प्रकार विशेषण नहीं बनता जैसे रूप रूपवान द्रव्य का बनता है। इस अवस्था में भी शब्द और अर्थ का तादात्म्य नहीं हो पाता। जबकि भर्तृहरि का मानना है कि छोटे बालक की क्रिया यथा हाथ, पैर चलाना, रोना आदि उसके ज्ञान द्वारा सम्पादित होती है। क्योंकि बालक भाषा का ज्ञान सीखने से पूर्व ही विविध कार्य सम्पादित करता है जो बिना ज्ञान के सम्पादित नहीं हो सकता। इस प्रकार भर्तृहरि सिद्ध करते हैं कि भाषा विशेष के ज्ञान के अभाव में भी ज्ञान की सत्ता अवश्य होती है। यदि ऐसा न माना जाए तो अर्थात् बच्चे का ज्ञान शब्द से रहित हो तो वह भाषा ही सीख नहीं पायेगा क्योंकि भाषा सीखने के लिए शब्द, अर्थ और इसके सम्बन्ध को ग्रहण करना तथा तदनुसार उसका प्रयोग आवश्यक है।

संदर्भ

1. अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेर्थाभावेन प्रक्रिया जगतो यतः॥ -वाक्यपदीय 1/1
2. विकारापगमे सत्यं सुवर्णकुण्डले यथा।
विकारापगमे सत्यां तथाहुः प्रकृति पराम्॥ -वा.प. 3/2/15
3. 3 यथैवान्ये कार्यकारणभावमाचक्षणाः कार्येषु कारणधर्मसमन्वयं
दृष्ट्वा व्यावृत्तभेदं सूक्ष्मसंवेधं सर्वविकारशक्त्यनुगतं
प्रत्यस्तमितव्यक्तिशक्तिरूपम् अणुग्रामं प्रथमं शक्तिसमूहम्
अविधकारणं जन्मपरिणामासंसर्गं विवर्तं व्यवस्थापयन्ति,
तथैवाम्नाये संहृतभोग्यभोक्तृशक्तेः वागात्मनो बहुध
कारणत्वमाम्नातम्। - स्वोपज्ञवृत्ति ,वाक्यपदीय1/112
ध1पृष्ठ-31,
4. न सोस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमाद्भवते। अनुविद्धमिव
ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते। -वा.प. 1/115
5. एतद्वि सर्वं यदुत्तं ज्ञानं वाग् अर्थश्र। -वृ.प., पृष्ठ-191
6. योगसूत्रा, 3/17
7. लोलीभूतानि शब्दार्थज्ञानानि घट इत्यवगम्यते। - हेलाराज
टीका,वा.प., 3/3/2
8. कः शब्दः कोर्थः इति प्रश्ने घट इत्ययं शब्दः घट इत्ययमर्थ
इत्येकाकारोत्तरदर्शनात् तयोरध्याससिद्धिः। घट इत्याकारकं
ज्ञानम् इति व्यवहारात् शब्दानयोरपि सः। इति- शब्दस्य
स्वरूप-परतात्पर्यग्राहकत्वात्। - वैयाकरण सिद्धान्त
लघुमजुशा, पृष्ठ-32
9. योपि प्रथमोपनिपाती बाह्योष्वर्थेषु प्रकाश स
निमित्तानामपरिग्रहेण वस्तुस्वरूपमात्रामिदं
तदित्यव्यपदेशयामृत्या प्रत्यवभासयति। -वा.प. 1/116
10. तत्राभिधीयते न खलु प्रकारत्रायमपीदमुपपद्यते
पदपदार्थसम्बन्धव्युत्पत्ति-
विरहिणामनवाप्तषड्योजना-वैरुप्य-सारुप्यमात्रा-प्रतिषुद्धि
वस्तु-ग्रहण-प्रवणेन्द्रियजप्रत्ययद र्शनात्, वृद्ध
व्यवहार-परियाधित-शब्दार्थ-सम्बन्ध-संस्थाध्यामपि
षडस्मरण-संस्कार-प्रबोध-हेतुभूत-प्रथमोदभूत-विशुद्धवस्त्वव-
भासस्यापरिहार्यत्वात्, यत्रा हि वस्तुनिनिविशमानः शब्दः
शब्दविद्-व्यवहारेषु योवृद्धः तद्दर्शने तत्संस्कारप्रबोधत्
स्मृतिपथमोति नान्यथेति।... सविकल्पकदशायामपि न
वाचकविशिष्टं वाच्यं मेचकगुण-खचितमिव
कुवलयमवलोकयति इति विस्तरतः प्रत्यक्षलक्षणे परीक्षितमेतत्।
.. संज्ञित्वमात्रामधिकमधुना ध्वनि-संनिधनेन बुद्धि मधिरोहति,
नतदविशिष्टोर्थः।... शब्दो ह्यनेकधर्मके
धीर्मव्येकतरधर्माव-धरणाभ्युपायो भवति। न
तत्रात्मानमारोपयति। न हि दीपेन्द्रिय-प्रभृतयः

- प्रतीत्युपायास्तदुपेथेरुपादावात्मानमारोपयन्ति। -जयन्तभट्ट
न्या.म.भा. 2, पृष्ठ-100
11. अस्ति ह्यालोचनज्ञानं प्रथमं निर्विकल्पकम्।
बालमूकादिविज्ञानसदृशं शुद्धवस्तुजम्॥ -श्लो.वा.,
प्र.सू.पृष्ठ-112
 12. इति-कर्तव्यता लोके सर्वाशब्द-व्यपाश्रया।
यां पूर्वाहित-संस्कारो बालोपि प्रतिष्ठते॥ -वा.प. 1/113
 13. यतः स्पष्टवाचां शब्दपूर्विका सा प्रतिपत्तिः दृष्टा
ततस्तपोमपि बालानां पूर्व-शब्दानुगमोवसीयते।
-वृ.प.,वा.प. 1/113
 14. समाविष्टवाचां च स्वजातिषु बालानामपि
पूर्वशब्दावेशभावना-संस्काराधनात् तासु तास्वध
'क्रियास्वनाख्येशब्दनिबन्धना प्रतिपत्तिरुत्पद्यते। -स्वा.वृ.वा.प.
1/113
 15. आद्यः करणविन्यासः प्राणस्योर्ध्वं समीरणम्। स्थानानामभिधतश्च
न विना शब्दभावनाम्॥ -वा.प. 1/114
 16. क्र.सं. ग्रन्थ का नाम लेखक, व्याख्याकार, संपादक, प्रकाशक
इत्यादि
 17. काश्मीर शैवदर्शन : बलजिन्नाथ पण्डित, श्री रणवीर केन्द्रीय
संस्कृत विद्यापीठ, जम्मू, सन् 1973
 18. काश्मीरशैवदर्शन मूलसिद्धान्त : डॉ. कैलाशपति मिश्र,
अर्द्धनारीश्वर प्रकाशन, वाराणसी, सन् 1973
 19. दार्शनिक विश्लेषण परिचय : हास्पर्स, अनु. भट्ट, गोवर्धन,
विहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, 1972
 20. पाणिनीयव्याकरणसमीक्षा : डॉ. रामप्रसाद त्रिपाठी, सं.सं.वि.,
सन् 1974
 21. प्रतिभा दर्शन : हरिशंकर जोशी, चौखम्बा विद्याभवन,
वाराणसी, सन् 1964 ई.
 22. भर्तृहरि प्राचीन टीकाओं के प्रकाश में वाक्यपदीय का एक
अध्ययनद्वः के.ए. सुब्रह्मण्य अयर ;अनुवादक- डॉ. रामचन्द्र
द्विवेदी, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, सन् 1981
ई.
 23. भाषा तत्त्व और वाक्यपदीय : डॉ. सत्यकाम वर्मा, भारतीय
प्रकाशन, दिल्ली, सन् 1964 ई.
 24. वाक्यपदीय संबंध समुद्देश ,हेलाराज व्याख्या के प्रकाश में एक
विवेचनात्मक अध्ययन द्वः डॉ. वीरेन्द्र शर्मा, विश्वेश्वरानन्द
विश्वबन्धु संस्कृत- भारती-शोध संस्थान, पंजाब
विश्वविद्यालय, होशियारपुर, सन् 1977 ई.
 25. वाक्यपदीय,ब्रह्मकाण्ड : भर्तृहरि, ज्ञा, द्रव्येशप्रणीत, प्रत्येकार्य
प्रकाशिका सहित, वृन्दावन, 1924
 26. वाक्यपदीय ,ब्रह्मकाण्ड वृत्ति व पद्धति सहितद्वः : के.ए.
सुब्रह्मण्य अयर, डेकेन कॉलेज, पूना, सन् 1966 ई.
 27. वैयाकरण सिद्धांत परम लघुमजुशा : नागेश भट्ट, डॉ.
कपिलदेव शास्त्री, कुरुक्षेत्रा प्रकाशन, सन् 1975 ई.
 28. शैव-सिद्धान्तदर्शन : डॉ. कैलाशपति मिश्र, अर्द्धनारीश्वर
प्रकाशन, वाराणसी, सन् 1972
 29. शक्तिवाद : गदाधर, सं. दामोदर शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत
सीरीज, वाराणसी, सन् 1929
 30. शिवदृष्टि : सोमानन्दनाथ, डॉ. राधेश्याम चतुर्वेदी सम्पूर्णानन्द
संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, सन् 1986 ई.
 31. श्लोकवार्तिक : कुमारिल भट्ट, एस.के. रामनाथ शास्त्री,
मद्रास, विश्वविद्यालय, संस्कृत सीरीज, मद्रास, सन् 1940 ई.
 32. संस्कृत साहित्य का इतिहास : डॉ. ए.बी. कीथ ;अनुवादकद्व
डॉ. मंगलदेव शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, सन् 1967 ई.
 33. Chakrabarti PC. The Philosophy of Sanskrit Grammar,
University of Calcutta; c1950.
 34. Iyer KA. Subramania The Vakyapadiya of Bhartrihari
With the Vritti, Chapter-1, English Translation, Deccan
College, Poona, 1st Edition; c1965.
 35. Pandey RC. Problem of Meaning in Indian Philosophy,
Motilal Banarsidass, Delhi; c1963.